Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

बिहार लोक सेवा आयोग (BPSC)

भारतीय राजव्यवस्था

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

भाग-2

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम *(Distance Learning Programme)*

Code: BRPM05

बिहार लोक सेवा आयोग (BPSC)

भारतीय राजव्यवस्था

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

भाग–2

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली–110009
दूरभाष : 011-47532596, 87501 87501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

BPSC DLP

विषय सूची (Contents)

14. केंद्र-राज्य संबंध **5-29**
- 14.1 विधायी संबंध 5
- 14.2 प्रशासनिक संबंध 9
- 14.3 वित्तीय संबंध 11
- 14.4 केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव की प्रवृत्तियाँ 21
- 14.5 अंतर-राज्य संबंध 23

15. विकेंद्रीकरण एवं लोकतांत्रिक शासन में जनभागीदारी **30-62**
- 15.1 पंचायती राज व्यवस्था एवं 73वाँ संविधान संशोधन 31
- 15.2 नगरपालिका व्यवस्था एवं 74वाँ संविधान संशोधन 44
- 15.3 अनुसूचित व जनजातीय क्षेत्र 56

16. आपातकालीन उपबंध **63-71**
- 16.1 राष्ट्रीय आपात 63
- 16.2 राष्ट्रपति शासन 66
- 16.3 वित्तीय आपात 68

17. संविधान का संशोधन **72-80**
- 17.1 संशोधन की प्रक्रिया 72
- 17.2 आधारभूत ढाँचा 74
- 17.3 प्रमुख संविधान संशोधन 75

18. लोकतंत्र की कार्यप्रणाली **81-92**
- 18.1 निर्णयन प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी 81
- 18.2 निर्वाचन आयोग 82
- 18.3 राज्य निर्वाचन आयोग 84
- 18.4 चुनाव सुधार 85
- 18.5 राजनीतिक दल 87
- 18.6 परिसीमन आयोग 89
- 18.7 निर्वाचन प्रणालियाँ 90

19. पारदर्शिता, जवाबदेही और अधिकार **93-117**
19.1 सूचना का अधिकार और सूचना आयोग 93
19.2 मानव अधिकार आयोग 99
19.3 अजा/अजजा/अपिव आयोग 103
19.4 राष्ट्रीय महिला आयोग 105
19.5 लोकपाल एवं बिहार लोकायुक्त 107
19.6 भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग 110
19.7 उपभोक्ता न्यायालय 110
19.8 सेवा का अधिकार 113
19.9 अन्य निवारण संस्थाएँ/प्राधिकरण 114

20. लोक सेवाएँ **118-135**
20.1 लोक सेवाओं की संवैधानिक स्थिति 118
20.2 संघ लोक सेवा आयोग 122
20.3 राज्य लोक सेवा आयोग 128
20.4 केंद्रीय सेवाओं के प्रशिक्षण संस्थान 130

21. वित्तीय नियंत्रण एवं संसदीय समितियाँ **136-148**
21.1 सार्वजनिक निधि का उपयोग 136
21.2 लोक व्यय पर संसदीय नियंत्रण 137
21.3 संसदीय समितियाँ (लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति आदि) 139
21.4 भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का कार्यालय 142
21.5 मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति में वित्त मंत्रालय की भूमिका 145

22. लोक नीति एवं अधिकार **149-158**
22.1 लोक नीति 149
22.2 नागरिक अधिकार पत्र 155

23. वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य **159-175**
23.1 भारतीय राजनीति में धर्म, जाति, भाषा एवं लिंग की भूमिका 159
23.2 नागरिक समाज एवं राजनीतिक आंदोलन 164
23.3 चुनावी राजनीति एवं मतदान व्यवहार 166
23.4 राष्ट्रीय अखंडता एवं सुरक्षा से जुड़े मुद्दे 169
23.5 सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष के संभावित क्षेत्र 170

अध्याय
14

केंद्र-राज्य संबंध (Centre–State Relations)

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद** 1 में उल्लेख किया गया है कि भारत अर्थात् इंडिया **राज्यों का संघ होगा**। भारत में शासन की संघीय प्रणाली को अपनाया गया है जिसमें समस्त शक्तियों को केंद्र एवं राज्यों के बीच संविधान के प्रावधानों के अनुसार विभाजित किया गया है। संविधान के **भाग-XI** में **संघ और राज्यों के बीच संबंध** के दो अध्याय दिये गए हैं, जिसके पहले अध्याय में **विधायी संबंध** (अनुच्छेद 245–255) तथा दूसरे अध्याय में **प्रशासनिक संबंध** (अनुच्छेद 256–263) का ज़िक्र है। जहाँ तक **वित्तीय संबंधों** का सवाल है तो उनकी चर्चा भाग-XII के कुछ हिस्सों (मुख्यत: 268–293) में की गई है।

केंद्र-राज्य संबंध (अनुच्छेद 245–293)

विधायी संबंध	प्रशासनिक संबंध	वित्तीय संबंध
(अनुच्छेद 245–255)	(अनुच्छेद 256–263)	(अनुच्छेद 268–293)

- भारतीय संविधान का स्वरूप संघात्मक है।
- भारत के लिये शब्द **फेडरेशन** की जगह यूनियन (संघ) शब्द का प्रयोग किया गया है।
- भारत में संघीय प्रणाली का प्रावधान **कनाडा** के संविधान से लिया गया है। कनाडा के समान ही भारत में संविधान के अनुसार संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है।
- भारतीय संविधान संघात्मक होते हुए भी इसमें अवशिष्ट शक्तियाँ संघ को प्रदान करके उसे शक्तिशाली बनाया गया है जिससे इसका स्वरूप एकात्मक रूप की तरह आभास होता है। संविधान संघात्मक होते हुए भी केंद्र के पक्ष में झुका हुआ प्रतीत होता है जो देश की एकता एवं अखंडता के लिये आवश्यक है।
- भारतीय संविधान में **शक्तियों का विभाजन केंद्र एवं राज्यों** के बीच **विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय** रूप में किया गया है। परंतु न्यायिक शक्ति के मामले में इस प्रकार की व्यवस्था का उल्लेख नहीं है।
- भारत में **न्यायिक शक्ति** के संदर्भ में **एकल न्यायप्रणाली** को अपनाया गया है तथा न्यायिक शक्तियों का विभाजन केंद्र एवं राज्यों के बीच में न करके एकीकृत न्यायप्रणाली को अपनाया गया है।
- केंद्र एवं राज्य अपने-अपने क्षेत्रों में प्रमुख हैं तथा वे अपने-अपने क्षेत्र के लिये एवं क्षेत्र के किसी विशेष इकाई के लिये नीतियाँ बना सकते हैं। जिस प्रकार केंद्र सरकार पूरे भारत के लिये या भारत की किसी इकाई के लिये नीतियाँ बना सकती है, उसी प्रकार राज्य सरकार अपने पूरे राज्य के लिये या राज्य के किसी क्षेत्र (इकाई) के लिये नीतियाँ बना सकती है। परंतु दोनों ही सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में प्रमुख हैं तथा संघीय तंत्र के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिये इनके मध्य अधिकतम सहभागिता एवं सहकारिता आवश्यक है।

14.1 विधायी संबंध *(Legislative Relations)*

भारतीय संविधान के भाग-11 के अध्याय-1 में अनुच्छेद 245 से अनुच्छेद 255 तक केंद्र एवं राज्यों के विधायी संबंधों का उल्लेख है। इसमें शक्तियों का विभाजन केंद्र एवं राज्यों के बीच संविधान के अनुसार उनके क्षेत्र के हिसाब से किया गया है। संविधान कुछ असाधारण परिस्थितियों में केंद्र को राज्य के विधानमंडल पर नियंत्रण प्रदान करता है।

केंद्र एवं राज्य के विधायी संबंधों के मामले में चार स्थितियाँ हैं-

1. केंद्र का राज्य के विधानमंडल पर नियंत्रण
2. केंद्र एवं राज्य के बीच विधायी विषयों का बँटवारा

- पूर्वोत्तर परिषद के कार्य लगभग वैसे ही हैं जैसे अन्य क्षेत्रीय परिषदों के हैं। इसके अलावा यह कुछ अन्य विषयों पर विशेष ध्यान देती है:
  - (क) क्षेत्र की सुरक्षा और लोक व्यवस्था से जुड़े मामलों पर सहयोग करना तथा उठाए गए कदमों की समीक्षा करना।
  - (ख) क्षेत्र के सभी राज्यों के लिये एकीकृत क्षेत्रीय योजना के निर्माण तथा क्रियान्वयन में सहयोग करना।

परीक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण तथ्य

- **अनुच्छेद** 360 के तहत **वित्तीय आपात** की घोषणा की जाती है। दो माह के भीतर वित्तीय आपात की उद्घोषणा का अनुमोदन संसद से किया जाना चाहिये।
- भारत के **संघीय शासन प्रणाली** को **कनाडा के संविधान** से लिया गया है।
- **संविधान की 7वीं अनुसूची** में **संघ सूची, राज्य सूची** एवं **समवर्ती सूची** के विषयों का उल्लेख है।
- संघ सूची के विषयों पर विधि बनाने का अधिकार सिर्फ संसद को है।
- **42वें संविधान संशोधन** द्वारा **समवर्ती सूची** में नया विषय जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन जोड़ा गया था।
- समवर्ती सूची को **ऑस्ट्रेलिया के संविधान** से लिया गया है।
- **अनुच्छेद 249 के तहत संसद को राष्ट्रीय हित** में **राज्य सूची** के किसी विषय पर **कानून बनाने का अधिकार** दिया गया है।
- भारत की संचित निधि से धन निकालने के लिये संसद द्वारा विनियोग विधेयक पारित किया जाता है।
- **अंतर्राज्यीय परिषद गठित** करने का अधिकार **राष्ट्रपति** को दिया गया है।
- **प्रधानमंत्री अंतर्राज्यीय परिषद** का **पदेन अध्यक्ष** होता है।
- राज्यसभा **अनुच्छेद 312** के तहत **नवीन अखिल भारतीय सेवा** का **सृजन** कर सकता है।
- **पुंछी आयोग** का गठन **केंद्र, राज्य संबंधों** पर **सिफारिश** देने के लिये किया गया था।
- **2003 में** (88वें संविधान संशोधन द्वारा) **सेवा कर** को **संघ सूची** में शामिल किया गया था।
- भारतीय संविधान में अवशिष्ट विषयों पर कर लगाने का अधिकार केंद्र (संसद) को दिया गया है।
- अनुच्छेद 245 क्षेत्रीय संबद्धता सिद्धांत से संबंधित है।
- भारत में मूलत: संघीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है।
- अब तक भारत में एक बार भी वित्तीय आपात की घोषणा नहीं हुई है।
- वित्तीय आपात के दौरान किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित धन विधेयक या वित्तीय विधेयकों को राष्ट्रपति के विचार के लिये रखा जा सकता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारत में संघीय वित्त आयोग संबंध रखता है-
   43वीं, B.P.S.C. (Pre)
   (a) राज्यों के बीच वित्त से
   (b) राज्यों एवं केंद्र के बीच वित्त से
   (c) केंद्र एवं स्वशासित सरकारों के बीच वित्त से
   (d) इनमें से कोई नहीं
2. नीति आयोग का अध्यक्ष कौन होता है?
   (a) राष्ट्रपति
   (b) प्रधानमंत्री
   (c) वित्त मंत्री
   (d) रिजर्व बैंक का गर्वनर
3. नीति आयोग की स्थापना कब हुई थी?
   (a) 16 मार्च, 2015 को
   (b) 20 मार्च, 2015 को
   (c) 20 जनवरी, 2015 को
   (d) 1 जनवरी, 2015 को
4. निम्नलिखित में से किस अनुच्छेद के अनुसार भारतीय संविधान अंतर्राज्यीय परिषद के संबंध में प्रावधान करता है?
   (a) अनुच्छेद 264 के अनुसार
   (b) अनुच्छेद 265 के अनुसार
   (c) अनुच्छेद 263 के अनुसार
   (d) अनुच्छेद 262 के अनुसार

5. भारतीय संविधान के किस भाग में केंद्र-राज्य विधायी संबंध दिये गए हैं?
   (a) भाग X में
   (b) भाग XI में
   (c) भाग XIII में
   (d) भाग XII में
6. संघ एवं राज्यों के बीच करों के विभाजन संबंधी प्रावधानों को-
   (a) राष्ट्रीय आपात के समय निलंबित किया जा सकता है।
   (b) वित्तीय आपात के समय निलंबित किया जा सकता है।
   (c) मात्र राज्यों की विधायिकों के बहुमत की सहमति से ही निलंबित किया जा सकता है।
   (d) किसी भी परिस्थिति में निलंबित नहीं किया जा सकता है।
7. निम्नलिखित में से कौन केंद्र और राज्यों में राजस्व बँटवारे के लिये मापदंडों की अनुशंसा करता है?
   (a) वित्त आयोग
   (b) नीति आयोग
   (c) अंतर्राज्यीय परिषद
   (d) केंद्रीय वित्त मंत्रालय
8. केंद्र तथा राज्यों के मध्य शक्तियों के वितरण के लिये भारत का संविधान तीन सूचियों को प्रस्तुत करता है- निम्नलिखित में से कौन-से दो अनुच्छेद शक्तियों के वितरण को विनियमित करते हैं।
   (a) अनुच्छेद 4 तथा 5
   (b) अनुच्छेद 141 तथा 142
   (c) अनुच्छेद 56 तथा 57
   (d) अनुच्छेद 245 तथा 246
9. निम्न में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
   (i) केंद्र-राज्य संबंधों से जुड़े उपबंध संविधान के भाग-XI में संघ व राज्यों के बीच संबंध शीर्षक के अंतर्गत दिये गए हैं।
   (ii) भाग-XI में दो अध्याय हैं। पहले में वित्तीय संबंध बताए गए हैं जबकि दूसरे में प्रशासनिक या कार्यकारी संबंध।

   कूटः
   (a) केवल (i)
   (b) केवल (ii)
   (c) (i) और (ii) दोनों
   (d) न तो (i) और न ही (ii)
10. पंद्रहवाँ वित्त आयोग का अध्यक्ष निम्नलिखित में कौन है?
   (a) डॉ. विजय एल. केलकर
   (b) डॉ. सी. रंगराजन
   (c) प्रो. वाई. वेणुगोपाल रेड्डी
   (d) एन. के. सिंह

उत्तरमाला

1. (b) 2. (b) 3. (d) 4. (c) 5. (b) 6. (d) 7. (b) 8. (d) 9. (a) 10. (d)

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संघात्मक व्यवस्था में केंद्र तथा राज्यों के मध्य तनाव के क्षेत्रों का विश्लेषण कीजिये। वर्तमान समय में संघीय सरकार तथा बिहार राज्य के मध्य संबंधों का वर्णन कीजिये। **56-59वीं, B.P.S.C (Mains)**
2. भारतीय संघीय व्यवस्था और केंद्र-राज्य के प्रशासनिक संबंध का राष्ट्रीय आतंकवाद-रोधी परिषद (एन.सी.टी.सी.) के विशेष संदर्भ में वर्णन कीजिये।
   53-55वीं, B.P.S.C (Mains)
3. भारतीय संघीय व्यवस्था में सामयिक दिगों की व्याख्या करें। क्या राज्यों की अधिक स्वायतता की आवश्यकता है?
   48-52वीं, B.P.S.C (Mains)
4. संघ-राज्य वित्तीय संबंधों में संबद्ध विवादास्पद मुद्दे की व्याख्या कीजिये।
5. नीति आयोग के प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिये।

अध्याय 15

विकेंद्रीकरण एवं लोकतांत्रिक शासन में जनभागीदारी (Public Participation in Decentralization and Democratic Governance)

लोकतंत्र वास्तविक अर्थों में तभी सफल होता है जब राजनीतिक शक्ति आम आदमी के हाथों में पहुँच जाती है। इसका आदर्श रूप यह होना चाहिये कि आम आदमी के पास स्थानीय मुद्दों, जैसे- पानी, सड़क, सफाई आदि की प्रशासन में निर्णायक भूमिका हो तथा व्यापक स्तर के मुद्दों के लिये उसे अपने प्रतिनिधि चुनने तथा उनसे संवाद व सवाल-जवाब करने का हक हो जो उसकी ओर से कानून बनाने तथा प्रशासन चलाने की प्रक्रिया में शामिल हों। आजकल इस आदर्श को 'सहभागितामूलक लोकतंत्र' (Participatory Democracy) कहा जाता है।

आजकल दुनिया भर में सहभागितामूलक लोकतंत्र की बयार चल रही है और वह हर देश के सत्ताधारियों को बाध्य कर रही है कि वे शक्ति का अधिकाधिक विकेंद्रीकरण करें। सामान्य राय यह बनती जा रही है कि स्थानीय महत्त्व के मुद्दों पर निर्णय की शक्ति उसी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं को सौंपी जानी चाहिये और ऊपर के स्तरों पर वही काम किये जाने चाहियें जो नीचे के स्तरों पर न किये जा सकें। भारत में भी 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण' और 'स्थानीय स्वशासन' (Local Self Government) की धारणाएँ नई नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यही धारणा 'पंचायती राज' कहलाती है जबकि शहरी क्षेत्रों में 'नगरपालिका' या 'नगर निगम'।

विकेंद्रीकरण व्यवस्था के आधार पर ही सच्चे लोकतंत्र की कल्पना की जा सकती है जो लोकतंत्र का मूल आधार है। इस संदर्भ में विभिन्न विचारकों के विचार निम्नलिखित हैं-

- **एल.डी. व्हाइट के अनुसार,** "जब सत्ता को ऊपरी स्तर से निचले स्तर पर ले जाया जाता है, तब उसे विकेंद्रीकरण कहते हैं।"
- **हेनरी फेयोल के अनुसार,** "जिस संकल्पना में निचले स्तर के लोगों के महत्त्व में वृद्धि होती है, उसे विकेंद्रीकरण कहते हैं।"
- **महात्मा गांधी के अनुसार,** "लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में **ग्राम स्वराज** की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।"
- गांधी जी का मानना था कि प्रत्येक आँख से आँसू पोंछना ही सच्चे लोकतंत्र का पर्याय है, क्योंकि भारत की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है, जिनकी परिस्थिति एवं समस्याएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके निदान के लिये ग्रामीण जनता की सत्ता में अधिक-से-अधिक भागीदारी होना आवश्यक है, जिससे वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ढूंढ सकें।

गांधी जी ने कहा था कि यदि गाँव नष्ट हो गए तो भारत भी नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि यदि हमारी स्वाधीनता को जनता की आवाज़ की प्रतिध्वनि बनना है तो पंचायतों को जितनी अधिक शक्ति मिले, जनता के लिये उतनी ही भली है। भारत में पंचायतें प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं, जिसे बहुत पुरानी पंच परमेश्वर की अवधारणा से जोड़ा गया है। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि भारत गाँवों में बसता है।

- महात्मा गांधी के सपनों को साकार करने के लिये **73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992** पारित करके पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक एवं स्थायी स्वरूप प्रदान करके विकेंद्रीकरण की अवधारणा को प्रतिपादित किया गया है।
- 73वें संविधान संशोधन अधिनियम का अनुपालन करने वाला **मध्य प्रदेश** देश का **प्रथम राज्य** है, जिसने मध्य प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1993 पारित तथा लागू किया।
- 1864 में भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा स्थानीय स्वशासन को मान्यता प्रदान की गई।
- 1870 में लॉर्ड मेयो ने पंचायतों को कार्यात्मक एवं वित्तीय स्वायत्तता प्रदान की।
- 1882 में तत्कालीन **वॉयसराय लॉर्ड रिपन** ने स्थानीय स्वशासन के लिये एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके द्वारा पूरे देश में- उपखंड अथवा ताल्लुका बोर्ड, ज़िला बोर्ड आदि स्थापित करने का सुझाव दिया। इस प्रस्ताव को 'स्थानीय स्वशासन' का **मैग्नाकार्टा** कहा जाता है। लार्ड रिपन को स्थानीय स्वशासन का 'जनक' (पिता) माना जाता है।

अध्याय
16

आपातकालीन उपबंध (Emergency Provisions)

सामान्य परिस्थितियों में भारतीय संविधान संघात्मक ढाँचे का अनुसरण करता है परंतु हमारे संविधान निर्माताओं को इस बात का अहसास था कि यदि देश की सुरक्षा खतरे में हो या उसकी एकता और अखंडता को खतरा हो, तो यह ढाँचा परेशानी का कारण भी बन सकता है। ऐसी परिस्थितियों में देश की रक्षा के लिये परिसंघ के सिद्धांतों को त्याग दिया जाता है और जैसे ही देश की स्थितियाँ सामान्य होती हैं, संविधान पुनः अपने सामान्य रूप में कार्य करने लगता है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग-18 के अनुच्छेद 352 से 360 में तीन प्रकार के आपातों का उल्लेख किया है–

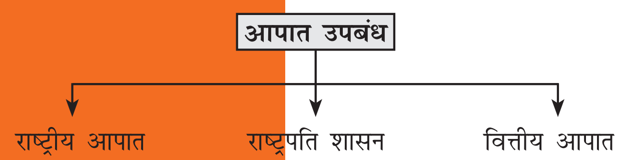

- युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति से उत्पन्न आपात जिसे आम बोलचाल में **राष्ट्रीय आपात** कहा जाता है। हालाँकि संविधान में इसके लिये **आपात की उद्घोषणा** शीर्षक का प्रयोग हुआ है।
- राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति से उत्पन्न परिस्थिति। प्रचलित भाषा में इसे **राष्ट्रपति शासन** के नाम से जाना जाता है। **संविधान में इसके लिये कहीं भी आपात या आपातकाल शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है।**
- ऐसी स्थिति जिसमें भारत का वित्तीय स्थायित्व या साख संकट में हो, तो उसे **वित्तीय आपात** कहते हैं। संविधान में भी इसे **वित्तीय आपात** कहा गया है।

16.1 राष्ट्रीय आपात *(National Emergency)*

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा करने की शक्ति प्राप्त है यदि उसे यह समाधान हो जाता है कि, **युद्ध, बाह्य आक्रमण** या **सशस्त्र विद्रोह** के कारण भारत या उसके किसी क्षेत्र की सुरक्षा संकट में है। ज़रूरी नही है कि संकट वास्तव में मौजूद हो, यदि संकट सन्निकट है तो भी उद्घोषणा की जा सकती है। **44वें संविधान संशोधन** द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति ऐसी उद्घोषणा केवल तभी कर सकता है जब संघ का मंत्रिमंडल (Cabinet) इस संदर्भ में अपने विनिश्चय की सूचना **लिखित** रूप में प्रदान करे।

मूल संविधान में आपात की उद्घोषणा का आधार 'युद्ध', 'बाह्य आक्रमण' और 'आंतरिक अशांति' था परंतु 44**वें संविधान संशोधन** के द्वारा 'आंतरिक अशांति' के स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' को आधार बनाया गया।

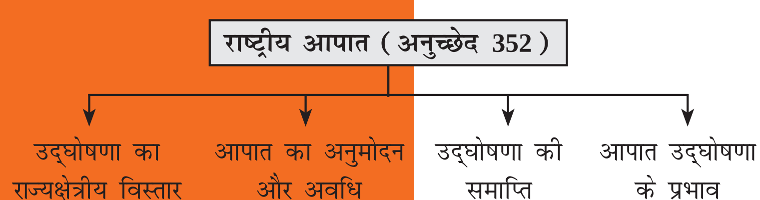

मूल संविधान में इस बात की कोई चर्चा नहीं थी कि आपात की एक ही उद्घोषणा की जा सकती है या एकाधिक उद्घोषणाएँ भी संभव हैं। **38वें संविधान संशोधन, 1975** द्वारा अनुच्छेद 352 में एक नया खंड जोड़कर यह स्पष्ट किया गया कि राष्ट्रपति को इस अनुच्छेद के तहत विभिन्न आधारों पर एक ही समय में विभिन्न घोषणाएँ करने की शक्ति होगी, चाहे राष्ट्रपति ने पहले से कोई उद्घोषणा कर रखी हो और वह प्रवर्तन में हो।

नोट : भारतीय संविधान में केवल अनुच्छेद 352 में ही एक बार मंत्रिमंडल (Cabinet) शब्द का प्रयोग हुआ है, शेष सभी स्थानों पर मंत्रिपरिषद शब्द का उल्लेख है।

अध्याय
17

संविधान का संशोधन
(Amendment of the Constitution)

भारत में संविधान संशोधन की शक्ति संसद को दी गई है, इसका प्रावधान संविधान के **भाग XX के अनुच्छेद 368** में किया गया है। भारतीय संविधान में संशोधन की यह प्रक्रिया **दक्षिण अफ्रीका** के संविधान से ग्रहण की गई है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है और इस गतिमान ब्रह्मांड में कोई भी चीज सदैव गतिहीन नहीं रह सकती। कोई भी संविधान निर्मात्री सभा यह दावा नहीं कर सकती, कि उनके द्वारा निर्मित संविधान सर्वकालिक प्रकृति का सिद्ध होगा। इसका मूल कारण यह है कि हम भविष्य की सभी बातों का अनुमान लगा ही नहीं सकते और कोई भी ढाँचा हर काल और हर परिस्थिति का सामना नहीं कर सकता। समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती ही है। इसलिये यही बात उचित है कि संविधान में ही उसके संशोधन का तरीका बता दिया जाए अन्यथा इस बात की पूरी संभावना है कि नई पीढ़ी उसे नष्ट करके अपनी आवश्यकतानुसार नया संविधान गढ़े।

17.1 संशोधन की प्रक्रिया *(Procedure of Amendment)*

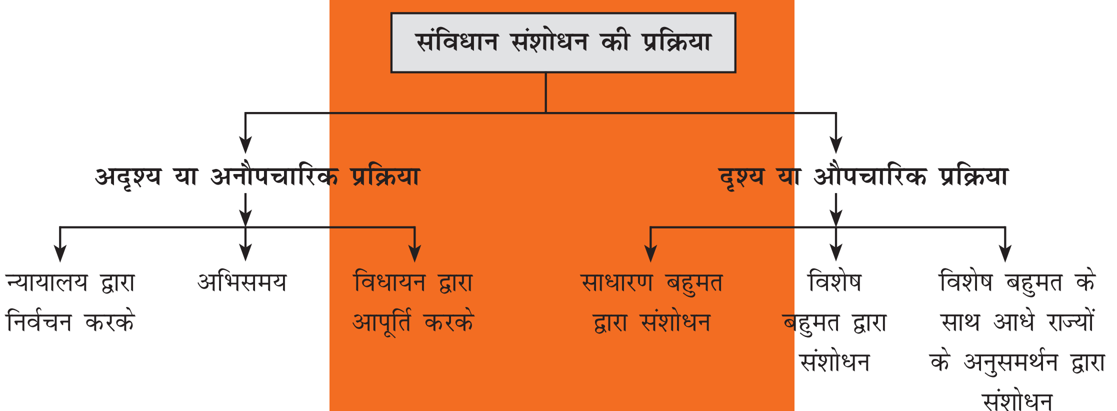

किसी भी संविधान में दो तरीकों से संशोधन संभव है-

- अदृश्य या अनौपचारिक प्रक्रिया द्वारा
- दृश्य या औपचारिक प्रक्रिया द्वारा

अदृश्य या अनौपचारिक प्रक्रिया *(Invisible or informal process)*

इस प्रक्रिया में घोषित तौर पर संविधान में संशोधन नहीं किया जाता परंतु फिर भी संविधान में परिवर्तन आ जाता है। इसके मुख्यत: तीन तरीके हैं-

(क) **न्यायालय द्वारा निर्वचन करके-** यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय संविधान के किसी उपबंध की मौलिक व्याख्या कर दे तो वह व्याख्या ही उस प्रावधान का वास्तविक अर्थ मानी जाती है जैसे- विभिन्न लोकहित वादों में संविधान के **अनुच्छेद 21** की व्याख्या में बहुत सी ऐसी बातें जुड़ी हैं जो मूल संविधान में नहीं थीं।

(ख) **अभिसमय अर्थात् संवैधानिक परंपराओं के पालन द्वारा-** राष्ट्रपति की जेबी वीटो या 'पाकेट वीटो' राष्ट्रपति- मंत्रिपरिषद संबंध, बहुमत स्पष्ट न होने पर राष्ट्रपति द्वारा सबसे बड़े दल के नेता को आमंत्रित करना आदि अभिसमय के ही उदाहरण हैं।

(ग) **विधायन द्वारा आपूर्ति करके-** जैसे- नागरिकता अधिनियम, 1955 आदि।

अध्याय
18

लोकतंत्र की कार्यप्रणाली (Methodology of Democracy)

लोकतंत्र में समस्त जनता शासन में भागीदार होती है और शासन की वैधता का स्रोत भी जनता है। लोकतंत्र वह व्यवस्था है जिसमें जनता सरकार को निर्णय लेने, कानूनों का निर्माण करने और उन्हें लागू करने का अधिकार प्रदान करती है। जनसंख्या की अधिकता के कारण आज अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का प्रचलन है जिसमें जनता अपने प्रतिनिधि के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करती है। राजतंत्र के विपरीत इन प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित सरकार को अपने निर्णयों एवं उठाए गए कदमों का जनता को आधार बताना होता है और सफाई देनी होती है। इस प्रकार जनता, निर्णय प्रक्रिया में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करती है।

18.1 निर्णयन प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी *(Citizens Participation in Decision Making Process)*

लोकतंत्र का मूलभूत विचार यह है कि लोग नियम बनाने में भागीदार बनकर स्वयं ही शासन करें। सभी नागरिकों की समान भागीदारी लोकतंत्र का आधार स्तम्भ है। यह भागीदारी **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार** द्वारा सुनिश्चित होती है। यदि कोई सरकार अपने सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकार प्रदान नहीं करती है, तो वह निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों को भागीदार होने से रोकती है और ऐसी सरकार **लोकतांत्रिक** नहीं कही जा सकती।

अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में चुनाव के माध्यम से जनता अपना प्रतिनिधि चुनकर शासन में भागीदार बनती है। चुनाव के अलावा सरकार के कार्यों में रुचि लेकर और उसकी समीक्षा करके भी जनता अपनी भागीदारी सुनिश्चित करती है। हड़ताल, जुलूस, धरना-प्रदर्शन, हस्ताक्षर अभियान, आंदोलन आदि के द्वारा जनता सरकार के गलत निर्णयों को उसके सामने लाती है और उन्हें बदलने के लिये मजबूर करती है। अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, टेलीविज़न, सोशल मीडिया आदि जनता के मुद्दों और सरकार के कार्यों पर बहुआयामी चर्चा करके जन भागीदारी को बढ़ावा देते हैं।

प्रजा और नागरिक की अवधारणा में मुख्य विभेद भागीदारी का ही है। प्रजा राज्य के निर्णयों से प्रभावित तो होती है परंतु निर्णय लेने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती जबकि लोकतंत्र में नागरिक राज्य के सभी कार्यों में भागीदार होते हैं। जनता की भागीदारी की गुणवत्ता प्रायः लोकतंत्र के मूल्यांकन के लिये आवश्यक मानी जाती है। अलोकतांत्रिक सरकार लोक-सहभागिता के सिद्धांत पर आधारित नहीं होती। अलोकतांत्रिक सरकार की संस्थाएँ भी अपने कार्यों के लिये लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। सत्तावादी, अधिनायकवादी, सर्वसत्तात्मक या सर्वाधिकारवादी सरकारें इसी के उदाहरण हैं। उनकी निर्णय प्रक्रिया पर लोक नियंत्रण व भागीदारी का अभाव है।

जन-भागीदारी, राजनीतिक प्रक्रिया और संस्थाओं को समझने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में जनता न केवल सरकारों अथवा संस्थाओं बल्कि अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में अधिक शिक्षित एवं जागरूक बनती है। निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाकर लोकतंत्र अपने नागरिकों को प्रभावशाली प्रशिक्षण देता है। जनता में स्वयं निर्माण की क्षमता से उत्पन्न होने वाला विश्वास प्रत्येक व्यक्ति में गरिमा एवं आत्मसम्मान उत्पन्न करता है। यह उनके व्यक्तित्व को भी बल प्रदान करता है। उससे जनता में बंधुत्व और सहयोग की भावना विकसित होती है।

लोकतांत्रिक सरकार का गठन वास्तव में लोगों की सामूहिक भागीदारी से होता है। इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि लोगों में समाज के लिये वांछनीय व अवांछनीय का भेद करने की योग्यता हो। राज्य की गतिविधियों का व्यावहारिक ज्ञान एवं चेतना सदा लाभप्रद होते हैं। चुनाव के माध्यम से निर्णय में भागीदारी से सरकार के कार्य संचालन में नागरिकों की रुचि बनी रहती है। निर्णय की भागीदारी की सार्थकता तभी पूर्ण होगी जब सभी वयस्क नागरिक मतदान में भाग लें और आपस में खुलकर उम्मीदवारों की बहुपक्षीय योग्यताओं की तुलनात्मक चर्चा करें। राजनीतिक दलों और हित समूहों के सम्मिश्रण पर लोकतांत्रिक दृष्टि रखें। ऐसी स्थिति में निर्णय लेने वाली संस्थाएँ जन आकांक्षाओं के अनुरूप निर्णय लेती हैं और इस प्रकार निर्णय प्रक्रिया में जन-भागीदारी की सार्थकता सिद्ध होती है।

अध्याय 19

पारदर्शिता, जवाबदेही और अधिकार (Transparency, Accountability and Rights)

लोकतंत्र में जवाबदेही, उत्तरदायित्व और पारदर्शिता सुशासन के अनिवार्य अंग हैं। सरकार नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन के माध्यम से जन कल्याण और जनोन्मुखी प्रशासन का लक्ष्य सुनिश्चित करती है। लोकतंत्र का अर्थ तभी सार्थक हो सकता है, जब सरकार जनता के प्रति अपनी जवाबदेही सुनिश्चित करे और प्रशासन में पारदर्शिता अपनाए। इसके लिये प्रशासनिक उत्तरदायित्व पर जन नियंत्रण आवश्यक है। प्रशासनिक उत्तरदायित्व को सरकारी कर्मचारियों के कर्त्तव्यों एवं ज़िम्मेदारी की व्यक्तिगत चेतना पर नहीं छोड़ा जा सकता। सुशासन की अवधारणा में पारदर्शिता और जवाबदेही आदि शासन की निरंकुशता पर नियंत्रण के लिये शक्तिशाली और प्रभावी उपाय हैं जो न केवल शासन को मार्ग पर भटकने से रोकते हैं अपितु उसे अधिकाधिक जनोन्मुखी भी बनाते हैं।

उत्तरदायित्व और नियंत्रण का संकेत यहाँ प्रशासन के उत्तरदायित्व तथा उसके पूर्ण पालन करने एवं सत्ता के दुरुपयोग रोकने से है। प्रशासनिक उत्तरदायित्व शब्द को जन संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में अभिलेख रखने के सूचक के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। उत्तरदायित्व की अवधारणा प्रशासकों की उस बाध्यता को परिभाषित करती है जिसके तहत उन्हें अपने कार्य निष्पादन का और उन्हें प्रदान की गई शक्तियों के प्रारूप का संतोषजनक लेखा-जोखा देना होता है। इसका मुख्य लक्ष्य मनमाने और गलत प्रशासनिक कार्यों को रोकना और प्रशासनिक प्रक्रिया की कार्यकुशलता तथा प्रभावशीलता को बढ़ाना है।

प्रशासन पर नियंत्रण मुख्यत: दो तरह से होता है–

1. आंतरिक नियंत्रण
2. बाह्य नियंत्रण

प्रशासन पर नियंत्रण

आंतरिक नियंत्रण

- सेवीवर्ग व्यवस्था
- बजटीय व्यवस्था
- कुशलता सर्वेक्षण
- पदसोपानीय व्यवस्था
- वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन
- व्यावसायिक मानदंड
- प्रशासनिक नेतृत्व
- जानकारी तथा छानबीन

बाह्य नियंत्रण

- कार्यपालिका द्वारा
- विधायिका द्वारा
- न्यायपालिका द्वारा
- प्रेस एवं मीडिया द्वारा
- जनता द्वारा

19.1 सूचना का अधिकार और सूचना आयोग *(Right to Information and Information Commission)*

सूचना का अधिकार अर्थात् राइट टू इन्फॉरमेशन का अर्थ है देश के नागरिकों को कुछ क्षेत्रों को छोड़कर (जिन्हें सार्वजनिक नहीं किया जा सकता) विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार। सूचना के अधिकार के माध्यम से, कोई राष्ट्र अपने नागरिकों के लिये अपने कार्य और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतंत्र में जनता अपनी पसंद के व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है। जनता की आकांक्षा होती है कि सरकार, पूरी ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करे। परंतु समस्या यह है कि यह जन-निर्वाचित

अध्याय
20

लोक सेवाएँ
(Public Services)

भारत में लोक सेवाओं का आरंभ ब्रिटिश शासन की औपनिवेशिक आवश्यकताओं एवं साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अंग्रेज़ों के द्वारा किया गया था। कंपनी के शासनकाल में लोक सेवकों का चयन हेलीबेरी कॉलेज की एक चयन समिति तथा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा किया जाता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा ब्रिटिशकाल में प्रचलित लोक सेवाओं की योजना को कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया।

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में लोक सेवाओं का विकास निम्नलिखित रूप में हुआ–

- 1854 में एक आयोग (The committee on Indian civil services) का गठन किया गया था, जिसकी अध्यक्षता मैकाले द्वारा की गई थी। लोक सेवकों की नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर कराने के संबंध में सुझाव देने के लिये इस आयोग का गठन किया गया था।
- 1855 में लंदन में भारतीय सिविल सेवा की पहली प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की गई थी।
- 1866 में भारत में सिविल सेवा परीक्षा की न्यूनतम आयु सीमा **18 वर्ष** से घटाकर **17 वर्ष** कर दी गई।
- 1886 में वायसराय लॉर्ड डफरिन ने सर चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में एचिसन आयोग का गठन किया जो सिविल सेवा में आयु से संबंधित मामले के संदर्भ में था। आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–
  - सिविल सेवा परीक्षाएँ **एक साथ इंग्लैंड** और **भारत** में न ली जाएँ।
  - सिविल सेवा परीक्षा में बैठने की **अधिकतम आयु 23 वर्ष** किया जाए।
- 1912 में इस्लिंगटन की अध्यक्षता में एक अन्य आयोग का गठन हुआ। इस आयोग ने सुझाव दिया कि सिविल सेवा की प्रतियोगी परीक्षा **इंग्लैंड** तथा **भारत** में एक साथ ली जाए।
- सर्वप्रथम 1922 में सिविल सेवा की परीक्षा एक साथ **लंदन** तथा **इलाहाबाद** में आयोजित हुई।
- वे सेवाएँ जो भारत की केंद्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थीं उन्हें केंद्रीय सेवाओं का नाम दिया गया तथा इन सेवाओं में नियुक्ति गवर्नर जनरल के द्वारा की जाती थी। सिविल सेवाओं को ऐसा व्यवस्थित रूप भारत शासन अधिनियम के द्वारा प्रदान किया गया।
- 1926 में **ली आयोग** के सुझाव पर पहली बार **लोक सेवा आयोग** की स्थापना केंद्रीय लोक सेवा आयोग के रूप में की गई, जिसमें एक अध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्य थे। इसके प्रथम अध्यक्ष **सर रोज वार्कर** थे।
- भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत इस केंद्रीय लोक सेवा आयोग का नाम बदलकर **संघीय लोक सेवा आयोग** कर दिया गया।
- 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होने पर लोक सेवा आयोग का नाम बदलकर **संघ लोक सेवा आयोग** कर दिया गया।

20.1 लोक सेवाओं की संवैधानिक स्थिति
(Constitutional Status of Public Services)

लोक सेवाओं के संदर्भ में जिस प्रकार की योजना ब्रिटिश शासनकाल में प्रचलित थी, उस योजना को स्वतंत्रता के उपरांत भारत में अपनाने के लिये भारतीय संविधान में कुछ आवश्यक परिवर्तन करके उसे स्वीकार कर लिया गया। लोक सेवाओं की संवैधानिक स्थिति के संबंध में भारतीय संविधान के भाग-XIV के अनुच्छेद 308 से 314 तक में भारत की लोक सेवाओं के संबंध में प्रावधान किया गया है।

अध्याय 21

वित्तीय नियंत्रण एवं संसदीय समितियाँ (Financial Control and Parliamentary Committees)

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में आवश्यक है कि सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण रखा जाए। भारत की केंद्र एवं राज्य सरकारें इस सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण रखने के लिये विभिन्न समितियों का गठन करती हैं। ये समितियाँ न केवल वित्तीय नियंत्रण रखती हैं बल्कि यह भी पता लगाती हैं कि स्वीकृत धन स्वीकृत कार्यों और शर्तों के अनुसार खर्च हुआ है या नहीं। इस प्रकार लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने एवं सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण रखने के लिये वित्तीय नियंत्रण एवं संसदीय समितियों का अहम योगदान है।

21.1 सार्वजनिक निधि का उपयोग *(Use of Public Fund)*

सरकार के पास जो भी धन होता है, उसे सार्वजनिक निधि कहते हैं। सार्वजनिक निधि के द्वारा ही सरकार अपने सभी प्रकार के व्यय एवं विभिन्न लोक कल्याणकारी कार्य करती है। सरकार अपने उपक्रमों से जो धन प्राप्त करती है वह भी सार्वजनिक निधि के अंतर्गत आता है। इस प्रकार वास्तव में सार्वजनिक निधि राष्ट्र की निधि है और सरकार का दायित्व है कि वह उसका सदुपयोग करे। भारतीय संविधान में सार्वजनिक निधि के संबंध में तीन प्रकार के खातों का उल्लेख है- संचित निधि, लोक लेखा निधि एवं आकस्मिकता निधि।

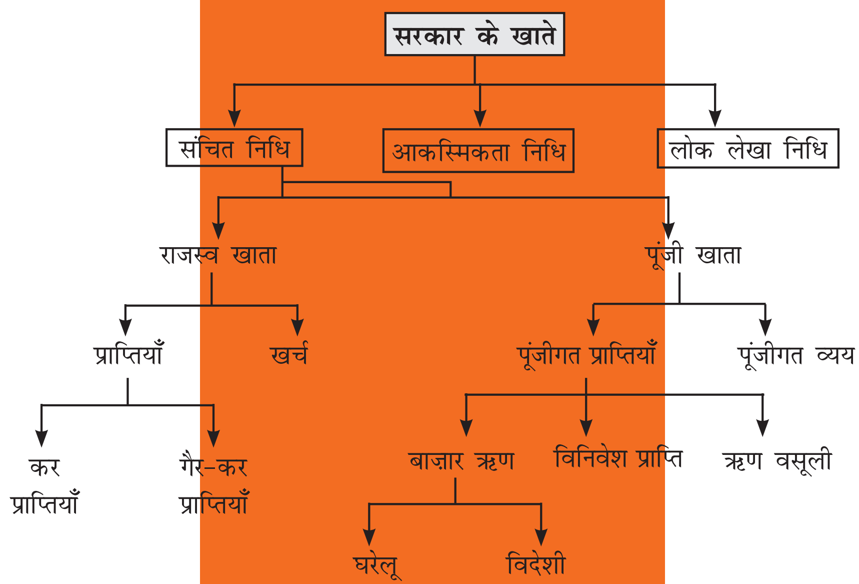

संचित निधि *(Consolidated fund)* [अनुच्छेद 266(1)]

यह एक ऐसी निधि है, जिसमें से सभी प्राप्तियाँ उधार ली जाती हैं और भुगतान जमा किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में-

- भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व
- राजकोषीय विधेयकों, छ्दणों या अग्रिम अर्थोपाय को जारी तथा केंद्र सरकार द्वारा लिये गए सभी ऋण
- ऋणों की पुनर्अदायगी में सरकार द्वारा प्राप्त धनराशि भारत की संचित निधि का भाग होगी। भारत सरकार की ओर से विहित प्राधिकृत सभी भुगतान इसी निधि में से किये जाते हैं। संचित निधि में से धन निकालने के लिये संसद विनियोग विधेयक पारित करती है। अनुच्छेद 266 में प्रत्येक राज्य के लिये राज्य की संचित निधि का उपबंध है।

अध्याय
22

लोक नीति एवं अधिकार
(Public Policy and Authority)

लोक नीति में 'लोक' से तात्पर्य 'सरकार' से है तथा सरकार द्वारा निर्मित नीतियों को 'लोक नीति' कहा जाता है। लोक नीति एक जटिल प्रक्रियात्मक प्रक्रिया है जो विभिन्न पारिस्थितिकीय प्रवृत्तियों, जैसे– सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदि से प्रभावित होती है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि जनता की विविध मांगों की पूर्ति के लिये सरकार द्वारा जिन नीतियों का निर्माण किया जाता है, उन्हें लोक नीति कहते हैं।

22.1 लोक नीति *(Public Policy)*

किसी भी लोकतांत्रिक देश में शासन अपनी इच्छाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये लोक नीतियों को अपनाता है। अर्थात् लोक नीति सरकार के दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है। किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था उसकी लोक नीति के स्वरूप व उसकी सफलता से जानी जाती है।

शासन की प्रधान प्रक्रियाओं में से एक नीति-निर्माण की प्रक्रिया को लोक प्रशासन का सार कहा जाता है। लोक शब्द जहाँ सामाजिकता तथा सार्वजनिकता को दर्शाता है वहीं नीति से तात्पर्य यह निर्णय करना होता है कि क्या किया जाए, कब किया जाए, कहाँ किया जाए तथा कैसे किया जाए?

लोक नीति के संबंध में प्रमुख विद्वानों ने निम्नलिखित विचार दिये हैं–

थॉमस आर. डाई के अनुसार, "लोक नीति का संबंध उन सभी बातों से है, जो सरकार करने अथवा न करने का निर्णय लेती है।"

टैरी के अनुसार, "लोक नीति उस कार्यवाही की शाब्दिक, लिखित व विहित बुनियादी मार्गदर्शक है जिसे प्रबंधक अपनाता है और जिसका अनुगमन करता है।"

प्लोडन के अनुसार, "किसी देश की सरकार के प्रत्येक स्तर पर नीतियों का निर्माण किया जाता है, वे सब वास्तव में लोक नीतियाँ ही हैं।"

डिमॉक के अनुसार, "नीतियाँ सजगता से निर्धारित आचरण के वे नियम हैं जो प्रशासनिक निर्णयों का मार्ग दिखाते हैं।

पॉल जे. फ्रेडरिक, "इस परिस्थिति में क्या करना है या नहीं करना है, के संबंध में किये गए निर्णय ही नीतियाँ हैं।"

लोक नीति के प्रकार *(Types of public policy)*

लोक नीति को लोक प्रशासन के अंतर्गत समग्र रूप से लोक नीति प्रक्रिया कहा जाता है। इसमें नीति-निर्माण एवं नीति क्रियान्वयन को सम्मिलित किया जाता है। भारतीय लोक प्रशासन में लोक नीति को प्राय: दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है।

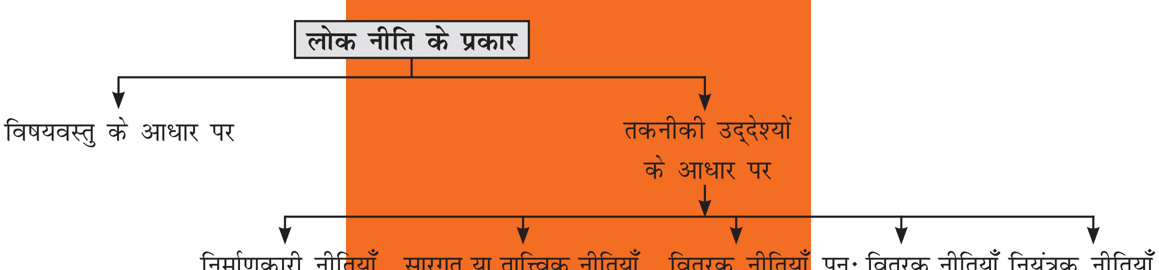

अध्याय 23

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य (Current Political Scenario)

भारत की राजनीति संविधान के अनुसार काम करती है, क्योंकि भारत एक संघीय (संसदीय) लोकतांत्रिक गणराज्य है। भारतीय राजनीति को गतिशीलता प्रदान करने हेतु विभिन्न कारकों का योगदान है। जैसे– जाति, धर्म, लिंग, भाषा आदि भारतीय राजनीति को प्रभावित करती है, परंतु भारत की इस विविधता का जब राजनीतिक दलों द्वारा राजनीतीकरण कर दिया जाता है तो यह एक सुचारु राजनीति में बाधा भी उत्पन्न करती है।

23.1 भारतीय राजनीति में धर्म, जाति, भाषा एवं लिंग की भूमिका *(Role of Religion, Caste, Language and Gender in Indian Politics)*

भारतीय समाज एक परंपरावादी एवं विविधतापूर्ण समाज रहा है। इस परंपरावादी एवं विविधतापूर्ण समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति की एक अद्‌भुत विशेषता है। भारत में आधुनिक राजनीति स्थापित होने के बाद इस अवधारणा का विकास हुआ था कि पश्चिमी शैली की राजनीति और लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाने के बाद भारत की पारंपरिक राजनीतिक संस्थाओं में जाति, धर्म, भाषा एवं लिंग आधारित विविधता का अंत हो जाएगा, किंतु स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीति में धर्म, जाति, भाषा एवं लिंग का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता गया। जहाँ सामाजिक क्षेत्र में इनका प्रभाव कम हुआ है, वहीं बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, केंद्र एवं राज्य सरकारों ने राजनीति में इनकी भूमिका स्वीकार की है।

भारतीय राजनीति में धर्म *(Religion in Indian politics)*

भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्त्वों में 'धर्म और सांप्रदायिकता' को अत्यंत प्रभावशाली माना गया है। जहाँ एक ओर धर्म का प्रयोग तनाव उत्पन्न करने के लिये किया जाता है, वहीं दूसरी ओर धर्म को प्रभाव और शक्ति अर्जित करने का एक माध्यम भी मान लिया जाता है। धर्म के नाम पर राजनीतिक दलों का निर्माण, चुनावों में समर्थन एवं मत प्राप्त करने के लिये धर्म का सहारा लेना, धर्म के नाम से जनता से अपील करना, आश्वासन देना, निर्वाचनों में धर्म के आधार पर प्रत्याशियों का चयन करना तथा मतदान व्यवहार में धर्म का राजनीतिक स्वरूप देखने को मिलता है। वहीं यह भी सत्य है कि भारतीय संविधान ने पंथनिरपेक्ष सिद्धांत को अपनाया है। भारतीय राजनीति में धर्म की निम्नलिखित भूमिका देखी जाती है–

राजनीतिक दलों में धर्म की भूमिका

स्वतंत्रता पूर्व ही भारत में धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण होने लगा था, जैसे– मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा आदि। धर्म के नाम पर भारत का विभाजन होने के बावजूद ये राजनीतिक दल न केवल अस्तित्व में रहे बल्कि धार्मिक सांप्रदायिकता को बढ़ावा देते रहे हैं। ये सांप्रदायिक दल धर्म को राजनीति में प्रधानता देते रहें। धर्म के आधार पर प्रत्याशियों का चुनाव करते हैं और संप्रदाय के नाम पर वोट मांगते हैं। चुनाव के समय गोवध पर रोक लगाना, मंदिर-मस्जिद के निर्माण का मुद्दा आदि उठाकर ये दल चुनावी गतिविधियों को दुष्प्रभावित करते हैं। वर्तमान में भारत की लगभग सभी राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। वे न केवल धर्म को चुनाव का आधार बनाते हैं बल्कि उसके नाम पर वोट की राजनीति भी करते हैं।

धार्मिक दबाव गुट की राजनीति में भूमिका

धार्मिक संगठन भारतीय राजनीति में सशक्त दबाव समूह की भूमिका अदा करते हैं। ये समूह न केवल शासन की नीतियों को प्रभावित करते हैं बल्कि अपने पक्ष में अनुकूल निर्णय भी करवाते हैं। उदाहरण के रूप में हिंदुओं की आपत्ति और आलोचना के बावजूद 'हिंदू कोड बिल' पास कर दिया गया, किंतु अन्य संप्रदाय के संबंध में कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठाया। भारत में कई मुस्लिम संगठनों के विरोध के कारण एक समान सिविल संहिता का निर्माण नहीं हो सका

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- क्विक रिवीजन हेतु प्रत्येक अध्याय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456